



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2016; 2(1): 878-882
 www.allresearchjournal.com
 Received: 19-11-2015
 Accepted: 21-12-2015

डॉ० मनोज कुमार

दिग्धी पोखर (पश्चिम), (प्रोफेसर
 कॉलोनी) लालबाग, दरभंगा,
 बिहार, भारत

प्राचीन राजस्थान में भक्ति का स्वरूप एवं विकास : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ० मनोज कुमार

सारांश

भारतीयों का जीवन प्राचीन काल से ही धर्मगत उत्कण्ठा से अनुप्राणित रहा है जिसमें नैतिक मूल्यों, आचारगत अभिव्यक्तियों तथा जगन्नियता के प्रति समर्पण की भावना का सन्निवेश था। भारतीय जनमानस में भक्ति-भावना का उदय आदिकाल में ही हो चुका था। अनेक सम्प्रदाय प्रवर्तक, तत्ववेत्ताओं, सन्तों, महात्माओं एवं कवियों ने भक्ति की विभिन्न परिभाषायें एवं व्याख्यायें की हैं। उन सभी का एक ही अन्तिम उद्देश्य या निष्कर्ष रहा है – भगवान के प्रति भक्त या उपासकी की आत्यन्तिकी भावना। भगवान में हेतुरहित, निष्काम, निष्ठायुक्त, अनवरत प्रेम ही भक्ति है। भगवान के प्रति भक्त की यह आत्यन्तिकी भावना या सेवावृत्ति मानव सृष्टि के आदिकाल से ही दर्शित होती है। मानव मन में भक्तिभाव का उदय सनातन, प्राकृत एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है। विश्वास, पूजा और प्रीति भक्ति भाव के मूलाधार हैं। उसमें तर्क को, विश्लेषणात्मक बुद्धि को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इस रूप में भक्ति का अस्तित्व सर्वमांगलिक एवं सार्वभौमिक है।

विषय-वस्तु

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है धार्मिकता। धार्मिकता के कारण प्रत्येक भारतीय एवं भारत का प्रत्येक क्षेत्र धार्मिक प्रवृत्ति से ओत-प्रोत रहा है। राजस्थान भी इसका अपवाद नहीं है। राजस्थान के अन्तर्गत भक्ति परम्परा वैष्णव सम्प्रदाय या वासुदेव की भक्ति के रूप में लोक संस्कृति का अंग प्रतीत होती है। उक्त तथ्य की पुष्टि ई.पू. द्वितीय-प्रथम शताब्दी के घोसुण्डी शिलालेख एवं अंवलेश्वर स्तम्भ लेख से होती है। इन लेखों के पश्चात् ई. सन् 12वीं शताब्दी तक राजस्थान से अभिलेखों की एक लम्बी श्रृंखला प्राप्त होती है जिनमें विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति भक्ति को व्यापक परम्परा निहित है।

वैष्णव सम्प्रदाय

प्राचीन भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों में वे सम्प्रदाय जो वर्तमान में भी प्रभावशाली रूप से लोकप्रिय हैं उनमें वैष्णव सम्प्रदाय की गणना की जा सकती है। इसके विकास क्रम में कई चरण दिखाई देते हैं। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से विदित होता है कि जिस भक्ति मार्ग के अचल शिलाधार पर इस सम्प्रदाय की मूल भित्ति खड़ी है उसका अस्तित्व संहित भाग की रचना के समय तक संदिग्ध लगता है। वह काल वास्तव में कर्मकाण्ड का युग था जब आर्य लोग प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण प्राकृतिक वस्तु या घटना में किसी न किसी देवता की कल्पना कर लेते थे और परिकल्पित देवत्व की तुष्टि के लिए यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करते थे। देवी-देवताओं की उपासना तथा उनको तुष्टि के लिए सम्पादित कर्मकाण्ड के पीछे उपासक आर्यों का प्रधान उद्देश्य ऐहिक सुखों की प्राप्ति था, तब उनका ध्यान कदाचित् अन्तःकरण को साधनाओं की अपेक्षा बाह्य विधानों का अनुसरण करने की ओर अधिक आकृष्ट था। उन्हें अपने कृत्यों के शुभ परिणाम की संभावना में दृढ़ विश्वास था और इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उनके कर्मकाण्ड भी मूलतः श्रद्धा द्वारा ही प्रभावित हुआ करते थे।¹ संभवतः श्रद्धा की मूलभूत से आगे चलकर श्रद्धा मूलक भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और धीरे धीरे आर्यों का प्रारंभिक बहुदेववाद, एकदेववाद में परिणत होने लगा। वैदिक ऋषियों के एकेश्वरवाद एवं बहुदेववाद का क्रमशः उपनिषदों एवं पुराणों में विस्तृत विवेचन मिलता है। उपनिषद कालीन एकेश्वरवादी चिन्तकों ने परमत्व की प्राप्ति के लिए साधना तथा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त किया। ऋषियों की यह ज्ञानमार्गी निर्गुण शाखा उतनी ही आस्तिक थी जितनी पुराणकालीन बहुदेववादी आर्य ऋषियों की सगुण शाखा। पुराणों की बहुदेववादी ऋषि शाखा ने अपने आराध्य एवं उपास्य को अवतारी बताया और उसका मानवीकरण कर मानवीय आकांक्षाओं के अनुरूप सख्य, दामपत्य तथा प्रेम के आत्मीय सम्बन्धों से प्रसन्न किया। इस प्रकार भक्ति की सगुण एवं निर्गुण धारायें वैदिक युग में स्थिर हो चुकी थीं और उन्हीं को लक्ष्य बनाकर परवर्ती भक्तों, सन्तों, चिन्तकों एवं कवियों ने अपने-अपने ढंग से भक्ति का विकास किया। भेद केवल साधना-आराधना का था किन्तु लक्ष्य दोनों का एक ही था।

Corresponding Author:

डॉ० मनोज कुमार

दिग्धी पोखर (पश्चिम), (प्रोफेसर
 कॉलोनी) लालबाग, दरभंगा,
 बिहार, भारत

वैदिक काल के आरम्भ में विष्णु सूर्य के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। शनैः शनैः वैदिक देवमण्डल में विष्णु का महत्व बढ़ता गया और ब्राह्मण काल तक आते-आते विष्णु अत्यन्त प्रभावशाली देवता बन जाते हैं। संभवतः यज्ञ की परम्परा के व्यापक विकास क्रम ने इसमें योगदान दिया हो। प्रारम्भिक वैष्णव धर्म बीज रूप में कतिपय सामान्य वैदिक भावनाओं को लेकर प्रवहमान होता हुआ लगता है। पीछे चलकर भक्ति सम्बन्धी एवं उपास्यदेव विषयक धारणाओं के उत्तरोत्तर विकास के साथ उसमें भिन्न-भिन्न तत्वों का समावेश होता गया। शनैः शनैः विष्णु का नारायण, वासुदेव तथा कृष्ण से तादात्म्य स्पष्ट हुआ। तैत्तिरीय आरण्यक में नारायण, विष्णु, वासुदेव – तीनों का तादात्म्य मिलता है ² – नारायणाय विदमहे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णु प्रचोदयात्। ³

धोसुण्डी (प्राचीन मध्यमिका ⁴ चित्तौड़) अभिलेख तथा अँकलेश्वर (प्रतापगढ़) स्तम्भ लेख के आधार पर राजस्थान में वैष्णव भक्ति की प्राचीनता ई.पू. द्वितीय-प्रथम शताब्दी ज्ञात होती है। ⁵ धोसुण्डी से प्राप्त अभिलेख में संकर्षण (बलराम) वासुदेव (कृष्ण) की पूजा के लिए नारायणवाटिका नामक शिला-प्राकार बनवाने का उल्लेख है। ⁶ अंबलेश्वर स्तम्भ लेख में सारि कुल के भागवत राजा द्वारा शैल भुजा निर्मित करवाने का उल्लेख प्राप्त होता है। ⁷ प्राचीन राजस्थान में वैष्णव भक्ति की लोकप्रियता के किंचित परवर्ती उदाहरणों के रूप में कुछ अन्य अभिलेखों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। कृत संत् 282 के नांदसा यूप लेख ⁸ (भीलवाड़ा) में ब्रह्म इन्द्र एवं प्रजापति के साथ-साथ विष्णु प्रासाद के निर्माण एवं भूमि प्रदान करने का विवरण है। इसी प्रकार कृत संत् 335 के बर्नाला यूप लेख ⁹ (लालसोट-दौसा) में यज्ञ दानादि द्वारा भगवान विष्णु के प्रसन्न होने एवं धर्म की वृद्धि होने का वर्णन है। बडवा (कोटा) एवं बिचपुरिया (नगर-उनियारा) नामक स्थानों से भी यूप लेख प्राप्त हुये हैं। राजस्थान से प्राप्त इन यूप लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही यह भू-भाग वैदिक विचारधारा का क्रीड़ा स्थल रहा।

अन्य अभिलेखों में वि.सं. 480 के गंगधार (झालावाड़) लेख में विष्णु मंदिर एवं मातृ देवियों का मंदिर निर्माण करवाने का वर्णन है। ¹⁰ इसी प्रकार कृत संत् 481 के नगरी लेख में पुण्य व यश की वृद्धि हेतु विष्णु के चरणों में प्रासाद निर्माण का विवरण है। ¹¹ वि.सं. 718 के कुण्डेश्वर मंदिर (नागदा-उदयपुर) शिलालेख में नश्वर जगत के भवसागर को पार करने हेतु कैटभरिपुर (विष्णु) का मंदिर बनवाने का उल्लेख है। ¹² 8वां शताब्दी के कामा अभिलेख (भरतपुर) ¹³, 10वां शताब्दी के चाटसू अभिलेख (चाकसू-जयपुर) ¹⁴ आदि में भी विष्णु मंदिर निर्मित करवाने का वर्णन प्राप्त होता है। उक्त अभिलेखों के अतिरिक्त 12 वीं शताब्दी तक के अन्य अभिलेखों का प्रारम्भ या तो विष्णु की स्तुति से हुआ है या फिर उनमें विष्णु का देवालय निर्मित करवाने का विवरण है। तत्कालीन वैष्णव मंदिरों में कुंभश्याम मंदिर (चित्तौड़), लक्ष्मीनारायण मंदिर (आहाड़), सासबहु मंदिर (नागदा-उदयपुर), चारभुजा मंदिर (खमणोर एवं घौड़), शेषशायी मंदिर (बाडोली-कोटा), उखा मंदिर (बयाना) बुचकला, किराडू एवं रणछोडराय (खेड़) इत्यादि की गणना होती है।

विष्णु के लगभग सभी अवतारों की यहाँ पूजा होती रही किन्तु वराह, राम एवं कृष्ण की उपासना विशेष लोकप्रिय हुई। वि.सं. 1000 के भर्तपट्ट (द्वितीय) ¹⁵ के लेख, वि.सं. 1010 के सारणेश्वर शिवालय लेख ¹⁶ तथा वि.सं. 1207 के चालुक्य कुमारपाल के चालुक्य कुमारपाल के अभिलेख ¹⁷ में वराह का मंदिर निर्मित करवाने का उल्लेख है। आबानेरी, केकीन्द, नागदा, किराडू एवं धौलपुर से राम तथा रामायण सम्बन्धी अनेक दृश्यों का अंकन उपलब्ध होता है। ¹⁸ इसी प्रकार कृष्ण भक्ति की व्यापक लोकप्रियता की पुष्टि रंगमहल, मण्डोर, आबानेरी, आबू (विमलवसही मंदिर), ओसियाँ, रवेड़, सदड़ी, केकीन्द आदि स्थलों में श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अनेक लीलाओं का अंकन है। ¹⁹ इसके अतिरिक्त जैन मंदिरों यथा विमलवसही तथा देलवाड़ा के

अन्तर्गत भी इन लीलाओं का प्रदर्शन है जो साम्प्रदायिक सद्भाव का प्रतीक है।

इनके अतिरिक्त राजस्थान के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित वैष्णव प्रतिमाओं से तत्कालीन युग में वैष्णव भक्ति की लोकप्रियता सिद्ध होती है। जिनके माध्यम से प्राचीन राजस्थान में वैष्णव भक्ति की प्रकृति एवं विकास को स्पष्ट किया जा सकता है।

शैव सम्प्रदाय

विष्णु के समान शिव की भी पूजा उपासना आरंभ हुई है। शैव भक्त शिव को सृष्टि का कर्ता, धर्ता और हर्ता मानने लगे। राजस्थान में शिव को अर्चना रुद्र, शिव, महादेव, काम्यकेश्वर, लचुकेश्वर, उमामहेश्वर, योगस्वामी, एकलिंग, गरिसुतापति, समिधेश्वर, अचलेश्वर, शंभु आदि विभिन्न नामों से की जाती थी। प्राचीन राजस्थान में शैव भक्ति की लोकप्रियता अनेक अभिलेखों से सिद्ध होती है। यथा – वि.सं. 770 के शंकरघट्टा लेख के प्रारंभ में शिव वंदना है। ²¹ 7वीं-8वीं शताब्दी के कल्याणपुर, वि.सं. 795 के कंसुआ लेख ²² में शिव मंदिर बनवाये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। सारणेश्वर, समिधेश्वर, सिद्धेश्वर, नीलकण्ठेश्वर आदि के शैव मंदिरों को अनुदानों के उल्लेख अभिलेखों में प्राप्त होते हैं। तत्कालीन अभिलेखों से विदित होता है कि शैवाचार्यों का धार्मिक जीवन में विशेष महत्व था। कामा- (भरतपुर) से प्राप्त अभिलेख से ज्ञात होता है कि शैव आचार्य विष्णु एवं चामुण्डा के मंदिरों के अतिरिक्त शिवेतर मंदिरों की देखभाल के लिए भी नियुक्त किये गये। ये शैवाचार्य वातयक्षिणो देवी, त्रैलोक्यमोहन, इन्द्रादित्य और शैव देवालयों की कुशलता से प्रबन्ध करते थे। राजपूत शासकों में प्रतिहार, गुहिल एवं चहमान नरेशों की शिव के प्रति विशेष भक्ति भावना थी।

समाज में शैव भक्ति की लोकप्रियता के कारण व्यापक स्तर शैव प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। लिंग प्रतिमायें, उमामहेश्वर, अर्द्धनारीश्वर, कल्याणसुन्दर (शिव-पार्वती विवाह का दृश्य) आदि विविध प्रकार की शैव प्रतिमायें सम्पूर्ण राजस्थान से प्राप्त हुई हैं तथा राजकीय संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। अनेक शैव देवालयों का निर्माण हुआ जिनमें हर्षनाथ, अर्थूणा, ओसियाँ, राजगढ़ बाडोली, केकोन्द एवं किराडू के शिवालय प्रमुख हैं। शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विभिन्न उपसम्प्रदायों पाशुपत, कापालिक एवं कालमुख आदि की भक्ति परम्परायें लोक जीवन में विद्यमान थीं।

शाक्त सम्प्रदाय

जब देवताओं की भिन्न-भिन्न नामों से उपासना आरंभ हुई तब उनकी भिन्न-भिन्न शक्तियों एवं पत्नियों की भी कल्पना की भी कल्पना की गई और उरनकी पृथक-पृथक पूजा होने लगी। सृष्टि की प्रक्रिया में नारी का योगदान अभूतपूर्व है। शक्ति का प्रारंभिक रूप शिव की पत्नी उमा अथवा पार्वती है जिन्हें जगज्जननी कहा जाता है। वस्तुतः उनका तांत्रिक और दार्शनिक विकास शक्ति के रूप में हुआ। अतः शक्ति एवं शिव की अभिन्नता स्वाभाविक है। शक्ति के रूप में विकसित होकर पार्वती कपालावरण, काली और दुर्गा बन गई, कालान्तर में उन्होंने महाकाली का रूप ग्रहण कर लिया। यहाँ यह स्मरणीय है कि शिव को भी महाकाल कहा जाता है। अतः शक्ति एवं शिव की एकात्मकता स्वयं सिद्ध है। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, नरसिंही और ऐन्द्री आदि सप्तमातकायें विभिन्न देवताओं की शक्तियाँ हैं। इनमें कुछ भयंकर और रुद्र शक्तियों की कल्पना भी की गई जिनमें काली, कराली, कापाली, चामुण्डा एवं चण्डी प्रमुख हैं। कुछ ऐसी शक्तियों की कल्पना हुई जो विषय-विलास की ओर उन्मुख करती है। इस प्रकार की देवियों में आनन्द भैरवी, त्रिपुरसुन्दरी एवं ललिता प्रमुख हैं।

राजस्थान में शाक्त भक्ति की लोकप्रियता का प्राचीनतम अभिलेखीय प्रमाण गंगधार ²³ (झालावाड़) से प्राप्त होता है। वि.सं. 480 के उक्त अभिलेख में मयूराक्ष नामक मंत्री द्वारा विष्णु मंदिर के

अतिरिक्त मातृदेवियों का मंदिर भी निर्मित करवाने का उल्लेख है। वि.सं. 665 के अभिलेख से गोठ में दविमाता मंदिर²⁴ (नागौर) के बारे में पता चलता है। वि.सं. 682 के बसंतगढ़ शिलालेख²⁷ में घोटासी के वल्यक्षिणी देवी के मंदिर को प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल (द्वितीय) द्वारा एक गाँव भेंट करने का उल्लेख है। प्रतिहार अभिलेखों में नागभट्ट, भोज एवं महेन्द्रपाल को भगवती का उपासक बताया गया है।²⁸ कामां के एक अभिलेख में शिव एवं विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा के साथ-साथ पार्वती की पूजा का भी विवरण है। मंदिरों के अतिरिक्त राजस्थान से अनेक शक्ति प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। हाल में प्राप्त बधाल (फुलेरा-जयपुर) ताम्रपत्र पर, स्थानक चतुर्भुजा देवी का अंकन है, जिसका समीकरण गोधासना (गौरी-पार्वती) से किया जाता है।²⁹

ऐसा प्रतीत होता है कि राजपूत नरेशों का शक्ति के प्रति विश्वास बढ़ता गया। परिणामस्वरूप कई राजपरिवारों ने तो इसे कुलदेवी के रूप में स्वीकार कर लिया। देशनोक की करणी जी आज भी बीकानेर के राजपरिवार की कुल देवी है। सिसोदियों ने बाणमाता, कच्छवाहों ने अन्नपूर्णा एवं जैसलमेर के शासकों ने सांगिया जी को अपनी कुलदेवी स्वीकृत किया।³⁰

सौर सम्प्रदाय

सूर्य जनसामान्य के ऐसे देवता है जिसके मानव धरातल पर अस्तित्व एवं प्रभाव के प्रभाव के प्रमाण नितान्त अनादि हैं। मानव ने अपनी आदिम अवस्था में ही सूर्य के अस्तित्व को स्वभाविक रूप से स्वीकार कर लिया था। भारत में सूर्योपासना का आरंभिक रूप प्रतीकात्मक था। सूर्य को चक्र, कमल, किरणयुक्त वृत्त एवं स्वास्तिक आदि प्रतीकों द्वारा प्रदर्शित किया जाता था³¹ सूर्य प्रतिमाओं की पूजा मगों द्वारा प्रचलित हुई, यह विवाद का विषय है। वराहमिहिर ने सूर्य प्रतिमाओं की पूजा मगों द्वारा प्रचलित होने का उल्लेख किया है।³² हिन्दुओं में पूजित प्रतिमाओं में सूर्य की प्रतिमा ही ऐसी है जिसके पैरों में लम्बे बूट मिलते हैं। संभवतः सूर्य की प्रथम मूर्ति शीत प्रधान ईरान से आई हो, जहाँ बूट पहनने की परम्परा थी।

राजस्थान के अनेक अभिलेखों में सौर उपासना के उल्लेख प्राप्त होते हैं। वि.सं. 480 के गंगधर अभिलेख में सूर्य के भयंकर तेज का वर्णन है। वि.सं. 999 के प्रतापगढ़ अभिलेख³³ में भर्तृभट्ट द्वारा इन्द्रराजादित्यदेव सूर्य मंदिर को पलासकूपिका नामक गाँव का एक खेत भेंट किये जाने का उल्लेख है। वि.सं.1003 के प्रतापगढ़ के एक अन्य अभिलेख³⁴ की पवित्र एवं कल्याणकारी किरणों का स्मरण किया गया है। इसी प्रकार वि.सं. 1070 के पोंकरण के बालकनाथ मंदिर के स्तम्भ लेख³⁵ का प्रारम्भ सूर्य वंदना से है। शक्ति कुमार आहाड़ अभिलेख (वि.सं. 1034) सूर्य मंदिर हेतु प्रतिवर्ष 14 द्रम दान दिये जाने का उल्लेख है। वि.सं. 1099 की लाहिनी बावड़ी प्रशस्ति (बसंतगढ़-सिरोही) में लाहिनी द्वारा वटपुर के जीर्ण-शीर्ण सूर्य मंदिर के पुनर्निर्माण का वर्णन है।³⁶ वि.सं. 1117 के भीनमाल लेख में "ओम् नमः सूर्यायः" एवं "ओम् नमो देवाय भास्वते" का उच्चारण कर जगत स्वामी (सूर्य) की वंदना की गई है।³⁷ तत्कालीन प्रमुख सूर्य मंदिरों के चित्तौड़ का कालिका माता मंदिर (यह मूलतः सूर्य मंदिर है) घोंटासा, आहाड़ा, गगरार, तूसा (उदयपुर), नादेसभा (उदयपुर), चींच एवं तलवाड़ा (बांसवाड़ा), झालरापाटन (झालावाड़ा), बूढादीत (कोटा), सत्वास (भरतपुर), आमेर (जयपुर), वर्माण एवं बसंतगढ़ (सिरोही), निवोरा, भीनमाल, ओसियाँ, रणकपुर, पालड़ी एवं थाँवला (नागौर) आदि की गणना की जा सकती है। उपर्युक्त मंदिरों के अतिरिक्त राजस्थान के संग्रहालयों में विविध प्रकार की सौर प्रतिमायें सुरक्षित हैं।

गाणपात्य सम्प्रदाय

गणपति का उल्लेख वेदों में हुआ है जहाँ उन्हें ब्रह्मणस्पति कहा गया है।³⁸ महाहस्ती, एक दंत, वक्रतुंड और दंती नाम भी उनके लिए प्रयुक्त किये गये हैं - एकन्दताय विद्महे वक्र तुण्डाय धीमहि

तत्रो दंती प्रचोदयात्। पौराणिक आख्यानों के अनुसार गणपति शिव के द्वितीय पुत्र हैं जो विघ्नों को समाप्त कर जीवन को मंगलमय बनाते हैं। जे. एन. बनर्जी के अनुसार गणेश पूजा निश्चित रूप से गुप्तकाल में प्रारंभ हो गई थी।³⁹ अमरकोश से विदित होता है कि राजस्थान में गणेश की पूजा आठ प्रसिद्ध नाम-विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर और गजानन से होती थी।⁴⁰ कक्कुक के घटियाला अभिलेख (वि.सं. 918)⁴¹ का प्रारंभ विनायक की स्तुति से हुआ है। घटियाला, बुचकला, मण्डोर, बीटू आदि स्थानों से गणेश की प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त भरतपुर, अलवर एवं उदयपुर के संग्रहालयों में नृत्यरत गणेश प्रतिमायें सुरक्षित हैं।

उपर्युक्त पौराणिक भक्ति परम्परा के पाँचों सम्प्रदायों की लोक उपासना के अतिरिक्त राजस्थान में ब्रह्मा की उपासना के भी निर्देश मिलते हैं। ब्रह्मा की उपासना तत्कालीन भक्ति परम्परा का विशिष्ट अंग थी। इसकी पुष्टि पुष्कर बसंतगढ़ एवं कुसमा के ब्रह्मा मंदिरों से होती है। छीछ (बांसवाड़ा), खेड, बीटू एवं जालौर में भी ब्रह्मा के पूर्व मध्यकालीन मंदिर हैं। कृत संवत् 282 के नांदसा युप लेख में भी ब्रह्मा के मंदिर का उल्लेख है। यह आश्चर्य का विषय है कि विष्णु एवं शिव के समान ब्रह्मा के सम्प्रदाय नहीं मिलते। मूर्ति कल्पना में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों को एक ही परमात्मा का रूप माना गया है ब्रह्मा की प्रतिमायें न केवल स्वतंत्र रूप से बालिक विष्णु, शिव एवं सूर्य के साथ भी प्राप्त होती हैं। इस प्रकार की प्रतिमायें झालरापाटन, ओसियाँ, किराडू, रणकपुर एवं कामां आदि के मंदिरों तथा विभिन्न संग्रहालयों में उपलब्ध हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती काल में वैष्णव, शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों की लोकप्रियता के कारण राजस्थान में ब्रह्मा की उपासना का लोकप्रिय स्वरूप विलुप्त हो गया और भक्ति परम्परा का गौण अंग बनकर रह गया।

प्राचीन काल के बाद मध्यकाल में राजस्थान के अन्तर्गत मुख्य रूप से भक्ति की चार परम्परायें लोकप्रियता प्राप्त कर रही थीं⁴² (1) सन्त-परम्परा, (2) भक्त-परम्परा, (3) नाथयोगी-परम्परा एवं (4) लोक देवता परम्परा।

सन्त परम्परा

इसके अन्तर्गत रामानन्द परम्परा के धन्ना तथा पीपा आदि सन्तों के अनन्तर जम्भोजी प्रणीत विश्णोई सम्प्रदाय, जसनाथजी प्रवर्तित जसनाथी-सम्प्रदाय, हरिदास निरंजनी के निरंजनी सम्प्रदाय, दादू सम्प्रदाय, लालदास के लालदासी पंथ तथा रामचरण प्रणीत रामरनेही सम्प्रदाय इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है। इस परम्परा के सभी सन्त प्रायः निर्गुणोपासक थे।

भक्त परम्परा

इसके अन्तर्गत मीरां, चरणदास, नागरीदास आदि के अतिरिक्त निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों की गणना की जा सकती है। इस परम्परा के भक्तगण सगुणोपासना एवं आनुष्ठानिक उपचारों के प्रति आस्थावान रहे। इनके साधना व्यवहार के अन्तर्गत निर्गुण सन्तों के आत्मोपलब्धि एवं सुधार से कहीं अधिक प्रेमभक्ति तथा समर्पण का भाव प्रभावी रहा।

नाथयोगी परम्परा

नाथयोगी परम्परा प्राचीन परम्परा है। अनुश्रुतियों के अनुसार इस परम्परा का उद्गम शिव जी से हुआ जैसे मत्स्यन्द्रनाथ के शिष्य गोश्वनाथ द्वारा संगठित स्वरूप प्रदान किया गया। इसके अन्तर्गत उनके द्वारा स्थापित बारह शाखाओं-सत्यनाथी, रामनाथी, पालकनाथी, गंगानाथी, नटेश्वरी, पावनाथी, धर्मनाथी, माननाथी, कपिलनाथी, रावलपंथी, वैराग्यपंथी एवं आयपंथी में से राजस्थान में वैराग्यपंथी (राताडुगापुष्कर) तथा माननाथी (महामंदिर-जोधपुर) का अस्तित्व विद्यमान रहा। नोहर (श्री गंगानगर) के समीप स्थित गोरख टीला के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि यहाँ पहले

गोरखनाथ का निवास था।⁴⁴ नोहर, राई (झुंझुनू), पोकरण तथा जालौर में नाथों के प्राचीन मठ-मंदिर हैं।

लोकदेवता परम्परा⁴⁵

प्रदेश की लोक देवता परम्परा पूर्वोक्त तीनों परम्पराओं के समन्वय एवं समिश्रणपरक स्वरूप की उद्भावना प्रस्तुत करती है। इसके अन्तर्गत न केवल सगुण भक्तों की विभेद परिहासात्मक तथा सुधारवादी प्रवृत्ति का अद्भुत समायोजन भी है। उपर्युक्त परम्पराओं के अतिरिक्त कतिपय तत्कालीन इतर परम्परायें भी अस्तित्वमान थी जिनका पारम्परिक भक्ति से स्पष्ट सम्बन्ध न होते हुए भी संस्थागत धर्म विशेषकर समाज से गहरा सम्बन्ध था। इनमें जैन परम्परा तथा सूफी परम्परा प्रमुख हैं।

जैन धर्म

तत्कालीन युग में राजस्थान जैन धर्म का एक प्रमुख केन्द्र था। यहाँ के राजपूत शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे फिर उन्होंने जैन धर्म को सहिष्णुता की दृष्टि से देखा। ई. सन् 861 के घटियाला अभिलेख,⁴⁶ ई. सन् 923 के राजोगढ़ अभिलेख⁴⁷ एवं ई.सन् 971 के जितौड़⁴⁸ आदि के लेखों में जैन मंदिर निर्मित करवाने के उल्लेख हैं। इसी प्रकार ई. सन् 1090 एवं 1115 के सेवाडी अभिलेखों, ई. सन् 1145 के नडलाई शिलालेख,⁴⁹ ई. सन् 1156 के धाणेराव लेख,⁵⁰ ई. सन् 1170 के बिजौलिया लेख,⁵¹ ई. सन् 1176 के नाडौल आदि के लेखों में जैन मंदिरों की व्यवस्था एवं दान का विवरण है। इसी प्रकार अनेक राजपूत नरेशों द्वारा जैन धर्म को प्रोत्साहन देने, जैन मंदिर निर्मित करवाने तथा भूमिदान देने आदि अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।⁵² ई. सन् 90वीं शताब्दी के पूर्व के अनेक जैन मंदिर कुंभारियाजो, अर्बुदाचल, बसंतगढ़, दियाणा, नाडलाई, मण्डोर, ओसियां, भीनमाल, चित्तौड़, सिरोहो आदि स्थानों पर हैं। 11वीं शताब्दी में निर्मित विमलवसही तथा 13वीं शताब्दी देलवाड़ा का जैन मंदिर की प्रसिद्धी सर्वविदित है।

सूफी-परम्परा

राजस्थान में सूफी परम्परा का प्रणयन 12वीं शताब्दी में रब्बाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने किया। उन्होंने वहदानियत (एकेश्वरवाद) तथा तरवल्लक वे अख्ला कि लाई (आत्मवत् सर्वभूतेषु) के सिद्धांतों के प्रचार से जातीय दन्द एवं वैमनस्य की ज्वालायें शामित कर साम्प्रदायिक समन्वय और सौमनस्य की स्थापना में योगदान दिया। इनके अनुयायियों में मुसलमानों के साथ-साथ हिन्दू भी थे। इनकी शिष्य परम्परा में शेख हमीददीन सूफी ने सुक्ल (नागौर) में अपना प्रचार केन्द्र स्थापित किया। सूफी सन्तों ने जन सामान्य में बल प्रयोग के स्थान पर सरलता, सहजता तथा उच्च नैतिक आचरणों के प्रभाव के रूप में अपनी छवि प्रतिष्ठित कर इस्लाम के आधारभूत सिद्धांत प्रचारित किये। इन्होंने प्रेम को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते हुए ईश्वर रूपी प्रेमिका के माधुर्य भाव से उपासना पर बल दिया।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थान में सगुण एवं निर्गुण भक्ति की परम्परा लोकप्रिय रही। यद्यपि सगुणोपासना परम्परा समसामयिकता के आधार पर एक शाश्वत परम्परा के रूप में गतिशील थी। प्राचीन काल में इस क्षेत्र में विविध धार्मिक परम्पराओं तथा मतसम्प्रदायों की आराधना पद्धति प्रचलित थी। पूर्व मध्यकाल एवं मध्यकाल में जैन धर्म तथा उसके अनेक सम्प्रदाय गच्छ प्रसार-प्रसार में संलग्न थे। सिद्ध नाथ पंथियों की गतिविधियाँ प्रबल हो रहीं थीं। अजमेर एवं नागौर को केन्द्र बनाकर सूफी मत का व्यापक क्षेत्र में प्रसार हो रहा था। इस प्रकार राजस्थान को धार्मिक परम्परा का स्वरूप न्यूनाधिकरूपेण अखिल भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का अन्यान्याश्रित होता है।

तदनु रूप इस विस्तृत क्षेत्र में कूटस्थ तथा प्रवाही धर्म और उपासना पद्धति के विविध विकास सोपानों एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त हुई। ई.पू. की द्वितीय शताब्दी से वैष्णव, शैव, शाक्त आदि पौराणिक सम्प्रदायों, प्राक्मध्ययुगीन धर्म की लोक परम्पराओं और तांत्रिक परम्पराओं इस धार्मिक संस्कृति को राजस्थान की जीवन शैली के अन्तर्गत एक सुनिश्चित आकार प्रदान किया। संभवतः राजस्थान ही एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ वैदिक, अवैदिक (जैन), पौराणिक तांत्रिक इत्यादि धार्मिक परम्पराओं का समवेत प्रचलन रहा। परम्परागत सिद्ध नाथ उपासना पद्धति तथा लोक देवताओं की आराधना परम्परा एक साथ गतिमान रही। वैष्णव सगुणोपासना पद्धति के साथ-साथ सूफियों और रामानंद की निर्गुण परम्परा तांत्रिक सिद्ध-नाथों के साथ रामदेव जी प्रभृति लोकदेवताओं की विशिष्ट रूपेण सगुणपरक उपासना एवं शास्त्रीय पौराणिक सम्प्रदायों के साथ विश्वेश्वर, दादूपंथी, रामस्नेही आदि सम्प्रदायों के प्रति आस्था संभवतः इसी क्षेत्र की विशेषता मानी जा सकती है। इसी शाश्वत भावना ने इस क्षेत्र की भक्ति परम्परा को विविधता, व्यापकता, अक्षुण्णता तथा सतत् जीवन्तता जैसी विशेषताएँ प्रदान कीं।

संदर्भ

1. गोस्वामी, बी.के., दि भक्ति कल्ट इन एन्शेन्ट इण्डिया, (कलकत्ता 1922,) पृ.6
2. रायचौधुरी, एच.सी., अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट (द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1975) पृ. 19
3. तैत्तिरीय आरण्यक, 10.1.6
4. दुबे, एस.एन., "एन्शेन्ट मध्यमिका", प्रोसीडिंग्स ऑफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, 1967, पृ. 29-31
5. त्रिगुणायत, एस.के., "प्राचीन राजस्थान के वैष्णव अभिलेख", जिज्ञासा, वाल्यूम 3 (2,1988), पृ. 187-189
6. अग्रवाल, वी.एस. "राजस्थान में भागवत धर्म का प्राचीन केन्द्र", नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक 62, 1957, पृ. 116-122
7. वाजपेयी, के. डी., अग्रवाल, के.एल. वाजपेयी, एस. ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, (जयपुर, 1992), पृ. 66
8. अल्तेकर, ए.एस., "नांदसा यूप इंशक्रिप्शंस", एपिग्रेफिया इण्डिका, 27 (4) 1949, पृ. 252-265 .
9. अल्तेकर, ए.एस., एपिग्रेफिया इण्डिका, वाल्यूम 26, पृ. 118-123
10. पलीट, जे.एफ., कॉर्पस इंशक्रिप्शनम् इंडिकेरम्, वाल्यूम 3 (वाराणसी, 1070), पृ. 72-78
11. पोग्रस रिपोर्ट, वेस्टर्न सर्किल, 1916, पृ. 56-57
12. डिस्कल्कर, डी.बी., सेलेक्शन फ्रॉम संस्कृत इंशक्रिप्शंस पार्ट 1, (राजकोट, 1925), पृ. 42-43.
13. इन्द्रजी, भगवान लाल, इण्डियन एण्टीक्वेरी 10 (1981), पृ. 34-36
14. सरकार, डी.सी, सेलेक्ट इंशक्रिप्शंस, वाल्यूम 2, (द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1983 पृ. 363-371
15. अग्रवाल, आर.सी., जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री 35(1, 1957), पृ. 355-358
16. श्यामल दास, वीर विनोद, भाग 1, पृ. 381 व आगे
17. ओझा, जी.एच, एनुअल रिपोर्ट राजपूताना म्यूजियम अजमेर, 1931, पृ. 3-4
18. अग्रवाल, आर.सी., "राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला में रामायण दिग्दर्शन", शोधपत्रिका, अंक 4 (6), 1954, पृ. 1-15
19. अग्रवाल, आर.सी., "कृष्ण एण्ड बलराम इन राजस्थान स्कल्पचर्स एण्ड एपिग्रेफ्स", इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली, 30 (1954), पृ. 339-353

20. अग्रवाल, आर.सी., नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 61, अंक 1, सं. 2013
21. द्रष्टव्य, पेमाराम, मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन (अजमेर, 1977), पृ.16
22. शर्मा, जी.एन., राजस्थान के इतिहास के स्रोत (जयपुर, 1973), पृ. 53
23. फ्लीट, जे.एफ., पूर्व निर्दिष्ट
24. ओझा, जी.एच., जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 43
25. एपिग्रेफिया इण्डिका, वाल्यूम 9, पृ. 187
26. शर्मा, जी.एन., पूर्व निर्दिष्ट, पृ.48
27. वही, पृ. 60-61
28. त्रिगुणायत, एस.के., "राजस्थान में वैष्णव धर्म : प्रतिहार शासकों का योगदान", वैचारिकी भाग 8 अंक 1, (1992), पृ. 13
29. अग्रवाल, आर.सी., "लक्ष्मी या दुर्गा", वैचारिकी, भाग 8, अंक 2, (1992), पृ. 15-16
30. शर्मा, जी.एन., सोशियल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान", (आगरा, 1986), पृ. 192-193
31. पाण्डे, एल.पी., सनवरशिप इन एशेन्ट इण्डिया, (दिल्ली, 1972), पृ. 1-3; श्रीवास्तव, वी.सी., सनवरशिप इन एन्शेन्ट इण्डिया (इलाहाबाद 1972), पृ. 341
32. द्रष्टव्य, ओझा, जी.एच., मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, (इलाहाबाद, 1966), पृ. 25
33. एपिग्रेफिया इण्डिका, वाल्यूम 14, पृ. 187
34. वही, वाल्यूम 9, पृ. 11-15
35. शोध-पत्रिका, वर्ष 22, अंक 2, पृ. 67
36. एपिग्रेफिया इण्डिका, वाल्यूम 9, पृ. 11-15
37. गोयल, अनीता, प्राचीन राजस्थान में सौर सम्प्रदाय (लघु शोध प्रबन्ध राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर 1990-91), पृ. 35
38. ऋग्वेद, 2.23.1
39. बनर्जी, जे.एन., दि डेवलेपमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रेफी पृ. 354
40. शर्मा, दशरथ, राजस्थान थू दि एजेज (बीकानेर, 1966), पृ. 390
41. वही, पृ. 391
42. द्रष्टव्य, शुक्ल, डी.सी. एवं सिंह, ओ.एन., राजस्थान की भक्ति परम्परा एवं संस्कृति (जोधपुर, 1992) पृ. 31
43. चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, (इलाहाबाद 2021), पृ. 58-59
44. ओझा, जी.एच., बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ. 64
45. शुक्ल, डी.सी., राजस्थान के प्रमुख सन्त एवं लोक देवता (जोधपुर, 1992)
46. शर्मा, जी.एन., राजस्थान इतिहास के स्रोत, पृ. 55-56
47. वही, पृ. 58
48. वही, पृ. 64
49. वही, पृ. 85
50. वही पृ. 89
51. एपिग्रेफिया इण्डिका, वाल्यूम 24, पृ. 90-100
52. जैन, के. सी. जैनिज्म इन राजस्थान (शोलापुर, 1963)